DSSSB TGT & PGT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
साहित्य
रघुवंशम्
Part -2
LIVE
05-07-2024 05:00 PM

काव्यांश की व्याख्या

मंगलाचरण

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।1 ||

प्रसंग- किसी भी ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तथा पाठकों, अध्यापकों एवं व्याख्याकारों के कल्याण के लिये तथा शिष्यों की शिक्षा के लिये कवि अपने काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में अपने इष्ट देवता की आराधना करते हैं। उक्त श्लोक में महाकवि कालिदास ने भगवान् शिव व पार्वती को प्रणाम किया है। यह ग्रन्थ का मंगलाचरण श्लोक है।

अन्वयः - (अहं) वागर्थौ इव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वागर्थप्रतिपत्तये वन्दे।

शब्दार्थ - अहं मैं कालिदास, वागर्थौ इव = शब्द और अर्थ के समान, सम्पृक्तौ = नित्य सम्बद्ध, जगतः = संसार के, पितरौ = माता और पिता, पार्वतीपरमेश्वरौ = पार्वती और शिव को, वागर्थप्रतिपत्तये = शब्दार्थ के ज्ञान के लिए, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद मैं कालिदास शब्द और अर्थ के सामान नित्य सम्बद्ध जगत् के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर शिव को शब्दार्थ के ज्ञान के लिए प्रणाम करता हूँ।

रघुवंशम्

सन्धि-

वागर्थाविव वगर्थौ + इव (अयादि सन्धि)

वागर्थप्रतिपत्तये वाक् + अर्थप्रतिपत्तये (जश्त्व सन्धि)

समास

पितरौ - माता च पिता च पितरौ (एकशेष द्वन्द्व समास)

पार्वतीपरमेश्वरौ - पार्वती च परमेश्वरश्च पार्वतीपरमेश्वरौ (द्वन्द्व समास)

वागर्थप्रतिपत्तये - वाक् च अर्थश्च वागर्थौ तयोः प्रतिपत्तिः तस्यै। (द्वन्द्व समास)

छन्द - अनुष्टुप्

लक्षणम् - श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

अनुष्टुप् या श्लोक के प्रत्येक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

विशेष साहित्य परम्परा में ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने की परम्परा है। मंगलाचरण तीन प्रकार के होते हैं 1. नमस्कारात्मक, 2. वस्तुनिर्देशात्मक एवं 3. आशीर्वादात्मक । महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंशम् महाकाव्य के प्रारम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है। ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये उन्होंने जगत् के माता-पिता शिव एवं पार्वती को प्रणाम किया है। परम्परा में भगवान् शिव को ज्ञान का अधिष्ठाता माना जाता है।

ज्ञान के लिये शिव की ही उपासना करने का विधान है 'ज्ञानमिच्छेत् महेश्वरात्' । मनीषियों के अनुसार शब्द की समग्र सम्पत्ति पार्वती के अधीन है। अशेष शब्दराशि को पार्वती ही धारण करती हैं तथा अर्थरूप समग्र जगत् को भगवान् शंकर धारण करते हैं। अतः शब्द और अर्थ की सम्यक् प्रतिपत्ति के लिये शिव और पार्वती की उपासना करनी चाहिये-

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा ।
अर्थरूपं यदखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥

इसलिये कालिदास ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में शब्दार्थ की प्रतिपत्ति के लिये शिव और पार्वती को नमस्कार किया है।

अलंकार - 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ में उपमान वागर्थों से उपमेय पार्वतीपरमेश्वरौ का सम्पृक्तत्व रूप साधर्म्य वर्णित होने के कारण उपमा अलंकार है।

इसका लक्षण - 'साम्यमन्येन वर्णयस्य वाच्यं चेदेकदोपमा' है।

सूर्यवंश का प्रभाव तथा कवि की विनम्रता -

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् । ।2 ॥

प्रसंग - प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने विनम्रता व्यक्त करते हुये महान् सूर्यवंश के समक्ष अपनी बुद्धि को स्वल्पविषया बताकर उस वंश का वर्णन करने में अपने को असमर्थ बताया है।

अन्वयः - सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया मतिः च क्व, मोहात् दुस्तरं सागरम् उडुपेन तितीर्षुः अस्मि ।

शब्दार्थ - सूर्यप्रभवः = सूर्य है कारण जिसका, वंश = कुल, क्व कहाँ, अल्पविषया = अल्प विषय को जानने वाली, मति = बुद्धि, क्व = कहाँ, दुस्तरम् = पार करने में दुष्कर, सागरम् = सागर को, मोहात् = अज्ञानता से, उडुपेन = छोटी नाव से, तितीर्षुः = तैरने की इच्छा वाला, अस्मि= हूँ।

अनुवाद - सूर्य से उत्पन्न होने वाला कुल कहाँ और अल्प विषय को जानने वाली मेरी बुद्धि कहाँ? फिर भी मैं अत्यन्त कठिन सागर को अज्ञानतावश छोटी नाव से पार करने का इच्छुक हूँ, अर्थात् जैसे छोटी नाव से अगाध सागर को पार करना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार मेरी स्वल्प विषयों को समझने वाली बुद्धि से महान् सूर्य वंश का वर्णन कर पाना अत्यन्त दुष्कर है।

सन्धि -

चाल्पविषया - च + अल्पविषया (दीर्घ सन्धि)

तितीर्षुर्दुस्तरम् - तितीर्षुः + दुस्तरम् (विसर्ग सन्धि)

उडुपेनास्मि - उडुपेन + अस्मि (दीर्घ सन्धि)

समास-

सूर्यप्रभवः - सूर्यः प्रभवो यस्य सः (बहुव्रीहि समास)

अल्पविषया - अल्पो विषयो यस्याः सा (बहुव्रीहि समास)

विशेष सूर्यवंशी राजाओं के परम पवित्र चरित्र का वर्णन करने के लिये महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य की रचना के लिये उद्यत हैं। यह वंश सूर्य से उत्पन्न परम तेजस्वी वंश है। इसमें महाराज मनु, दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम जैसे पराक्रमी और यशस्वी राजा हुये हैं जिनका यश तथा धर्म समग्र भूमंडल में व्याप्त है। ऐसे राजाओं के वर्णन के लिये जिस सामर्थ्यवती मनीषा की आवश्यकता होती है, वह मुझमें नहीं है। रघुवंश यश और कीर्ति की लहरों से लहराता हुआ महान् समुद्र की भाँति है और मेरी स्वल्प विषया मति छोटी नौका के

समान है। जिस प्रकार छोटी नौका से महान् समुद्र को नहीं पार किया जा सकता उसी प्रकार स्वल्प विषया मति से रघुवंश का वर्णन भी असम्भव है। कवि ने रघुवंश के उत्कर्ष का कथन अपनी कृति की उत्कृष्टता के लिये किया है तथा अपनी बुद्धि को स्वल्प विषया कहकर अपनी विनम्रता द्योतित की है।

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।।3।।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने सूर्यवंश का वर्णन सफलतापूर्वक न कर पाने के अनन्तर अपने को अपयश का पात्र बताने का उपक्रम किया है।

अन्वयः - मन्दः कवियशः प्रार्थी प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुः वामन इव उपहास्यतां गमिष्यामि ।

शब्दार्थ - मन्दः = मूढ, कवियशःप्रार्थी = कवि के यश को प्राप्त करने के इच्छुक, प्रांशुलभ्ये = उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य, फले फल में, लोभात् = प्राप्ति के इच्छा से, उद्बाहुः = ऊपर उठाये हाथ वाले, वामनः = बौने पुरुष के, इव = समान, उपहास्यताम् = उपहास की पात्रता को, गमिष्यामि = प्राप्त करूँगा।

अनुवाद - मैं मूर्ख हूँ और कवि के यश को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। ऐसा मैं कालिदास उन्नत पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य फल की ओर लोभ से ऊपर हाथ उठाये हुए बौने व्यक्ति के समान उपहास का पात्र बनूँगा।

सन्धि –

गमिष्याम्युपहास्यताम् - गमिष्यामि + उपहास्यताम् (यण सन्धि)

लोभादुद्बाहुः - लोभात् + उद्बाहुः (जश्त्व सन्धि

उद्बाहुरिव - उद्बाहुः + इव (विसर्ग सन्धि)

समास -

कवियश:प्रार्थी - कवीनां यशः कवियशः तत् प्रार्थयते तच्छीलः (तत्पुरुष समास)

प्रांशुलभ्ये - प्रांशुना लभ्यः तस्मिन् (तत्पुरुष समास)

विशेष - प्रतिपाद्य वस्तु के महत्त्व और उसकी महिमा का प्रतिपादन कर कवि अपने प्रबन्ध के महत्त्व को द्योतित करते हैं। कालिदास का प्रतिपाद्य रघुवंश है। जिसके बारे में उन्होंने स्वयं बताया है कि यह वंश सूर्य से उत्पन्न है। सूर्य स्वयं समस्त भुवनों को प्रकाशित करते हैं, अतः उनके वंश का महान् होना स्वाभाविक है। एक तो सूर्य से उत्पन्न वंश, दूसरा मैं।

उसके वर्णन को उद्यत स्वल्प बुद्धि वाला मन्द, मूर्ख होकर भी काव्यनिर्माण से प्राप्त होने वाले यश को पाने का इच्छुक हूँ। ऐसे में मेरी गति उस बौने के समान है जो उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य ऊँचे पेड़ में लगे फल को तोड़ने की इच्छा से हाथ ऊपर उठा रहा हो। ऐसे व्यक्ति की दशा को देखकर लोग उस पर हँसते हैं। मेरी भी वही गति होगी।

पूर्व कवियों की अधमर्णता

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥14॥

प्रसंग - महाकवि कालिदास ने प्रस्तुत श्लोक में पूर्व महाकवियों वाल्मीकि आदि के द्वारा अपने ग्रन्थों में किये गये सूर्यवंश के वर्णन के सहारे रघुवंश के वर्णन में अपनी सफलता की सम्भावना की है।

अन्वयः अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति।

शब्दार्थ - अथवा = अथवा, पूर्वसूरिभिः मेरे पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि, व्यास आदि के द्वारा, कृतवाग्द्वारे = रामायण आदि की रचना के माध्यम से, अस्मिन् = इस, वंशे = कुल में, वज्रसमुत्कीर्णे = वज्र द्वारा छिद्र किये गये, मणौ मणि में, सूत्रस्य इव = सूत्र के समान, मे मेरी, गतिः स्थिति, अस्ति है।

अनुवाद - वाल्मीकि आदि पूर्व कवियों ने सूर्यवंश पर रामायण आदिकाव्य लिखकर मेरे लिये वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। अतः मेरे लिये सूर्यवंश में प्रविष्ट होना तथा उसका वर्णन करना उसी प्रकार सरल हो गया है, जिस प्रकार वज्र से छेदे गये मणि में सूत्र सरलता से प्रविष्ट हो जाता है।

सन्धि -

वंशोऽस्मिन्	-	वंशे + अस्मिन् (पूर्वरूप सन्धि)
सूत्रस्येव	-	सूत्रस्य + इव (गुण सन्धि)
इवास्ति	-	इव + अस्ति (दीर्घ सन्धि)

समास -

कृतवाग्द्वारे - कृतं वाक् द्वारं यस्य सः कृत्वाग्द्वारः तस्मिन् (बहुव्रीहि समास)

पूर्वसूरिभिः - पूर्वे च ते सूरयः, पूर्वसूरयः, तैः पूर्वसूरिभिः (कर्मधारय समास)

वज्रसमुत्कीर्णे - वज्रेण समुत्कीर्णः वज्रसमुत्कीर्णः, तस्मिन् (तत्पुरुष समास)

विशेष - कालिदास अति विनयशील और निरहंकार कवि हैं। पूर्व में उन्होंने अपनी बुद्धि को 'स्वल्पविषया' कहा था तथा अपने को मन्द भी कहा था जो उनकी विनयशीलता और विनम्रता का परिचायक है। अब जब रघुवंश का वर्णन करना उन्होंने प्रारम्भ कर ही दिया है तो इसकी पूर्णता भी निश्चित है। ऐसे में इस पूर्णता का श्रेय वह अपने पूर्व कवियों वाल्मीकि तथा व्यास आदि को देते हुये अपने को 'सूत्र' के समान बताते हैं।

उनका कथन है कि रामायण की रचना करके वाल्मीकि ने तथा महाभारत में रामकथा का उल्लेख करके व्यास ने मेरे लिये रघुवंश में प्रवेश करने के लिये वाणी का द्वार बना दिया है। जिस प्रकार वज्र से छिद्र बना देने के बाद मणि जैसे कठोर पदार्थ में सूत्र जैसा कोमल तन्तु प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वाल्मीकि आदि के द्वारा निर्मित वाग्द्वार से मणि में सूत्र की भाँति मैं प्रविष्ट हो जाऊँगा। इस प्रकार इस महाकाव्य की पूर्णता का समग्र श्रेय पूर्व कवियों को जाता है, मुझे नहीं।

रघुकुल के राजाओं की विशेषता

सोऽहमा जन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् । ।5।।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक में कवि कालिदास ने रघुवंश के राजाओं की विशेषता का वर्णन किया है। ये राजा जन्म से शुद्ध, फलप्राप्तिपर्यन्त कार्य करने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासन करने वाले थे। इनका रथ स्वर्ग तक जाता था।

अन्वयः - सः, अहम्, आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम्, आसमुद्रक्षितीशानाम्, आनाकरथवर्त्मनां ("रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये")।

शब्दार्थ - सः = वह पूर्वोक्त गुणों से युक्त, अहम् = मैं कालिदास, आजन्मशुद्धानाम् = जन्म से लेकर शुद्ध, आफलोदयकर्मणाम् = फलप्राप्ति पर्यन्त कार्य करने वाले, आसमुद्रक्षितिशानाम् = समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, अनाकरथवर्त्मनाम् = स्वर्ग पर्यन्त रथ को ले जाने वाले।

अनुवाद - पूर्वोक्त गुणों से युक्त मैं कालिदास जन्म से शुद्ध, फल की प्राप्ति पर्यन्त कार्य को करने वाले, सागर पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, स्वर्ग पर्यन्त रथ को ले जाने वाले रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

सन्धि-

सोऽहम् - सः + अहम (पूर्वरूप-विसर्ग सन्धि)

सूत्रस्येवास्ति - सूत्रस्य + इव (गुण सन्धि)

इवास्ति - इव + अस्ति (दीर्घ सन्धि)

समास-

आफलोदयकर्मणाम् - आफलोदयः कर्म येषां ते तेषां (बहुव्रीहि समास)

आसमुद्रक्षितीशानाम् - आसमुद्रं क्षितेः ईशः क्षितीशः तेषाम् (तत्पुरुष समास)

अनाकरथर्मनाम् - अनाकं स्थवर्त्म येषां तेषाम् (बहुव्रीहि समास)

विशेष - कालिदास ने यहाँ पुनः अपने को 'सोऽहम्' कह कर अपने पूर्व गुणों का स्मरण कराया है तदनन्तर रघुवंशी राजाओं के वैशिष्ट्य का वर्णन प्रारम्भ किया है। 'सः' इस तत्पद से उन्होंने अपने अल्पविषयमतित्व आदि का स्मरण कराते हुये इस श्लोक में रघुवंशी राजाओं की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है।

1. आजन्मशुद्धानाम् - जो जन्म से ही शुद्ध हैं, पवित्र हैं अर्थात् शास्त्रों द्वारा विहित जिनके निषेक आदि समस्त संस्कार सम्पन्न किये गये हैं।

2. आफलोदयकर्मणाम् जो फल (परिणाम) की सिद्धि पर्यन्त कर्मशील रहते हैं। प्रारम्भ किये गये कार्य को मध्य में नहीं छोड़ते।

3. आसमुद्रक्षितीशानाम् - समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के जो स्वामी हैं। इस पृथ्वी के वही चक्रवर्ती नरेश हैं।

4. अनाकरथवर्त्मनाम् - उनका रथ स्वर्ग तक जाता है। वे इन्द्र के सहचारी हैं। इस प्रकार के जो रघुवंशी दिलीप, अज आदि राजा हैं, मैं उनका वर्णन करूँगा।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथाऽपराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।6।।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक में कवि कालिदास ने पूर्व श्लोक में वर्णित विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य चार विशेषताओं का उल्लेख किया है।

अन्वयः - यथाविधिहुताग्नीनां, यथाकामार्चितार्थिनाम्, यथापराधदण्डानां, यथाकालप्रबोधिनां "रघूणामन्वयं वक्ष्ये"।

शब्दार्थ - यथाविधिहुताग्नीनाम् = विधि के अनुसार अग्नि में हवन करने वाले, यथाकामार्चितार्थिनाम् = याचकों की इच्छा के अनुसार दान देने वाले, यथाऽपराधदण्डानां = अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, यथाकालप्रबोधिनाम् = उचित समय पर प्रबुद्ध होकर कार्य पूर्ण करने वाले।

अनुवाद मैं शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने वाले और याचकों की इच्छा के अनुसार दान - देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, उचित समय पर प्रबुद्ध होकर अपने कार्य को पूर्ण करने वाले, रघुवंश के राजाओं का वर्णन करूँगा।

सन्धि -

यथाकामार्चित - यथाकाम + अर्चित (दीर्घ सन्धि)

यथापराध - यथा + अपराध (दीर्घ सन्धि)

समास-

यथाविधिहुताग्नीनाम् - विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधि,
यथाविधि हुता अग्नयः यैर्तेषाम्
(अव्ययीभावगर्भबहुव्रीही)

यथापराधदण्डानाम् - अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराध दण्डो
येषाम् तेषाम् - (अव्ययीभावगर्भबहुव्रीही)

यथाकालप्रबोधिनाम् - कालम् अनतिक्रम्य यथाकालं, यथाकालम्
(अव्ययीभावगर्भबहुव्रीही) प्रबोधिनः तेषां
यथाकालप्रबोधिन

विशेष - महाराज रघु के वंश में उत्पन्न राजाओं की अन्य विशेषतायें ये हैं कि वे 'यथाविधिहुताग्नि' हैं। शास्त्रों में प्रतिपादित विधि के अनुसार वे यज्ञ आदि का सम्पादन करते हैं तथा आहुति देकर अग्नि को तृप्त करते हैं। शास्त्रीय विधि का अतिक्रमण वे नहीं करते। वे अपने द्वार पर आये याचकों को उनकी इच्छा के अनुसार, जितनी आवश्यकता है उतना दान देकर उन्हें तृप्त करते हैं। रघु ने कौत्स को स्वयं यथेच्छ दान दिया था, जिसका वर्णन कालिदास ने इसी ग्रन्थ में किया है। रघुवंशी राजा अपराधी को उसके अपराध के अनुसार दण्ड

देते हैं। जैसा अपराध वैसा दण्ड। वे 'यथाकालप्रबोधी हैं। यथासमय प्रबोधनशील हैं, समय के अनुसार ही अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं। समय को व्यर्थ नहीं जाने देते और किसी कार्य की पूर्णता में विलम्ब भी नहीं करते।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥7॥

अन्वयः - त्यागाय सम्भृतार्थानां, सत्याय मितभाषिणां, यशसे विजिगीषूणां, प्रजायै गृहमेधिनाम्, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये"।

शब्दार्थ - त्यागाय = सत्पात्र को दान के लिए, सम्भृतानां धन को इकट्ठा करने वाले, सत्याय = सत्य के लिए, मितभाषिणाम् = कम बोलने वाले, यशसे = यश के लिए, विजिगीषूणाम् = जीतने के इच्छा वाले, प्रजायै प्रजा के लिए अर्थात् सन्तान के लिए, गृहमेधिनाम् = विवाह करने वाले।

अनुवाद - योग्य सत्पात्र को दान देने के लिए जो धन को संचित करते थे, सत्य बोलने के लिए जो कम बोलते थे और यश के लिए जीतने की इच्छा करते थे किसी अन्य के राज्य को छीनने के लिए नहीं। जो सन्तान प्राप्ति के लिए विवाह करते थे, भोग के लिए नहीं। मैं इस प्रकार के रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

समास- सम्भृतार्थानाम् - सम्भृत: अर्थ: यै: ते सम्भृतार्था: तेषाम् सम्भृतार्थानाम् (बहुव्रीहि)

मितभाषिणाम् - मितं भाषन्ते तच्छीला: इति मितभाषिण: तेषाम्।

विजिगीषूणाम् - विजेतुं इच्छन्ति इति विजिगीषन्ति, विजिगीषन्ति इति विजिगीषव: तेषां विजिगीषूणाम् (उपपदसमास)

गृहमेधीनाम् - गृहै: मेधितुम् शीलम् येषां ते गृहमेधिन: तेषां गृहमेधिनाम्

विशेष - रघुवंशी राजा धन का संचय करते थे किन्तु धन संचय का उनका लक्ष्य अपने वंश के उपभोग के लिये नहीं था। वे सत्पात्र को दान देने के लिये ही धन संचय करते थे। दुर्व्यापार हेतु धनार्जन में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी। वे मितभाषी थे, कम बोलते थे किन्तु उनका मितभाषण किसी के पराभव के लिये न होकर सत्य के लिये था। अधिक बोलने वाला मिथ्याभाषी होता है। वे यश के लिये विजय प्राप्त करते थे, अर्थसंग्रह या किसी के राज्य में अधिकार करने के लिये नहीं। वे सन्तान प्राप्ति के लिये विवाह करते थे काम के लिये नहीं।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् । ।8।।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के शैशव, यौवन और वृद्धावस्था के कार्यों का उल्लेख करते हुये उनकी विशेषतायें बतायी हैं।

अन्वयः शैशवे, अभ्यस्तविद्यानां, यौवने, विषयैषिणां, वार्धके, मुनिवृत्तीनाम्, अन्ते, योगेन, तनुत्यजां, 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये'।

शब्दार्थ

शैशवे = बाल्यकाल में,

अभ्यस्तविद्यानां = समस्त विद्याओं का अभ्यास करने वाले,

यौवने = युवावस्था में,

विषयैषिणाम् = गृहस्थ में रहकर विषयों का भोग करने वाले,

वार्धके = वृद्धावस्था में, मुनिवृत्तीनां ऋषियों के समान आचार व्यवहार करने वाले,

अन्ते = मृत्युकाल में,

योगेन = चित्तवृत्तियों के निरोध से अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम में परमात्मा को स्मरण करते हुए,

तनुत्यजां = शरीर को छोड़ने वाले।

अनुवाद - बाल्यकाल में विद्या का अभ्यास करने वाले, युवावस्था में गृहस्थाश्रम के विषयों का भोग करने वाले, वृद्धावस्था में ऋषियों के समान व्यवहार करने वाले, अर्थात् (अरण्य में रहकर परमात्मा को ध्यान करने वाले) मरण काल में भगवान् को स्मरण करते हुए शरीर को छोड़ने वाले रघुवंश का वर्णन मैं कालिदास करूँगा।

सन्धि-

योगेनान्ते - योगेन अन्ते (दीर्घ सन्धि)

समास-

अभ्यस्तविद्यानाम् - अभ्यस्ता: विद्या यै: ते अभ्यस्तविद्या: तेषाम् अभ्यस्तविद्यानाम् (बहुव्रीहि समास)

मुनिवृत्तीनाम् - मुने: वृत्तिरिव वृत्ति: येषाम् ते मुनिवृत्तय: तेषाम् मुनिवृत्तीनाम् (बहुव्रीहि समास)

तनुत्यजाम् - तनुम् त्यजन्ति इति तनुत्यजः तेषाम् तनुत्यजाम् (उपपद समास)

विशेष - भारतीय संस्कृति में जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। रघुवंश के राजा शैशव काल में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये विद्या का अभ्यास करते थे।

यौवन काल में गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुये विषय आदि का उपभोग करते थे तथा वृद्धावस्था में वानप्रस्थ धारण कर मुनियों के समान आचरण करते हुये अन्ततः संन्यास आश्रम में चित्तवृत्तियों का निरोध करके तथा परमात्मा का ध्यान करते हुये शरीर का त्याग करते थे। इस प्रकार उनका समग्र जीवन नियम और संयम से परिपूर्ण था।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।। 9 ||

प्रसंग - कालिदास ऊपर चार श्लोकों में रघुवंश में उत्पन्न राजाओं की विशेषताओं का उल्लेख करने के अनन्तर उनका वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

अन्वयः - सः, अहम् तनुवाग्विभवोऽपि, सन्, तद्गुणैः, कर्णमागत्य, चापलाय, प्रचोदितः, सन्, 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये'।

शब्दार्थ

तनुवाग्विभवोऽपि = वाणी के सामर्थ्य से रहित, सन् = होने पर भी, तद्गुणैः = रघुवंशी राजाओं के गुणों के द्वारा, कर्णमागत्य = कान में आकर, चापलाय = चपलता के लिए अर्थात् बिना विचार किये कार्य करने के लिए, प्रचोदितः = प्रेरित किया, रघूणाम् = रघुवंशियों के, अन्वयम् = वंश को, वक्ष्ये कहूँगा।

सन्धि

तद्गुणैः - तत् + गुणैः (जश्त्व सन्धि)

समास-

तनुवाग्विभवः - वाचां विभवः वाग्विभवः तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः। (बहुव्रीहि समास)

तद्गुणैः - तेषां गुणाः तद्गुणाः तैः तद्गुणैः। (तत्पुरुष समास)

विशेष - कालिदास ने पाँचवें श्लोक से आठवें श्लोक तक कुल चार श्लोकों में, रघुवंशी राजाओं के सोलह गुणों का वर्णन किया है। जो निम्नलिखित हैं -

1. जन्म से ही पवित्रता, 2. फलप्राप्तिपर्यन्त उद्यमशीलता, 3. समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का स्वामित्व, 4. स्वर्गपर्यन्त रथगामित्व, 5. शास्त्रोक्तविधि से यज्ञ सम्पादन, 6. याचकों को आवश्यकतानुसार दान देना, 7. अपराध के अनुसार दण्डविधान, 8. समयानुसार कार्य सम्पादन, 9. त्याग के लिये धन संचय, 10. सत्य के लिये मितभाषिता,

11. यश के लिये विजयेच्छा, 12. सन्तति के लिये गृहमेधिता, 13. शैशव काल में विद्या का अभ्यास, 14. यौवन में विषय का उपभोग, 15. वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति का धारण तथा 16. संन्यास आश्रम योगबल से देह का त्याग।

कालिदास का कथन है कि यद्यपि मेरी वाणी में उतना सामर्थ्य नहीं है तथापि इन राजाओं के गुण श्रवण ने मुझे इनका गुणगान करने के लिये रघुवंश महाकाव्य की रचनारूप चपलता करने के लिये प्रेरित किया है। कवि ने अपने राजाओं के इन गुणों का निर्देश करके अपनी कृति की उत्कृष्टता का संकेत किया है।

विद्वानों से रघुवंशी राजाओं के चरित्र को सुनने का आग्रह

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।।10।।

प्रसंग - महाकवि कालिदास ने इस श्लोक में विद्वानों से रघुवंशी राजाओं के चरित्र को सुनने का आग्रह किया है तथा यह कहा है कि सोने की परीक्षा अग्नि में ही हुआ करती है।

अन्वयः - सदसद्व्यक्तिहेतवः सन्तः तं श्रोतुम् अर्हन्ति, हि हेम्नः विशुद्धिः श्यामिका अपि वा अग्नौ संलक्ष्यते ।

शब्दार्थ

सदसद्व्यक्तिहेतव: = सत्य और असत्य को जानने वाले, **सन्त:** = विद्वान्, **तं** = उस रघुवंश को, **श्रोतुम्** = सुनने के लिए, **अर्हन्ति** = योग्य है, हि क्योंकि, **हेम्न:** = सोने की, **विशुद्धि:** = शुद्धता, **श्यामिका** = दोषयुक्तता, **अपि** = भी, **अग्नौ** = अग्नि में ही, संलक्ष्यते = प्रतीत होती है।

अनुवाद - उचित और अनुचित को जानने वाले विद्वान् ही इस रघुवंश महाकाव्य को सुनने के योग्य हैं, क्योंकि स्वर्ण की शुद्धता अथवा दोष युक्तता का परीक्षण अग्नि में डालने से ही होता है।

सन्धि-

ह्यग्नौ - हि + अग्नौ (यण सन्धि)

समास-

सदसद्व्यक्तिहेतवः - सत् च असत् सदसती सदसतोः व्यक्तिः सदसद्व्यक्तिः सदसद्व्यक्तेः हेतवः सदसद्व्यक्तिहेतवः (तत्पुरुष समास)

विशेष - उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से महाकवि कालिदास ने विद्वानों को अपने काव्य के श्रवण के लिये आमन्त्रित किया है। उनको अग्नि तथा अपनी कृति को स्वर्ण माना है। स्वर्ण का परीक्षण अग्नि में ही हो सकता है।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिये-

(i) रघुवंशम् का मंगलाचरण है-

(क) नमस्कारात्मक
(ख) वस्तुनिर्देशात्मक
(ग) आशीर्वादात्मक
(घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) रघुवंश महाकाव्य का अंगीरस है-

(क) श्रृंगार (ख) वीर

(ग) हास्य (घ) करुण

अंगी - प्रधान

(iii) रघु ने दान दिया-

(क) परशुराम (ख) याज्ञवल्क्य

(ग) कौत्स (घ) विश्वामित्र

शब्दावली

सम्पृक्तौ = नित्य सम्बद्ध

वागर्थप्रतिपत्तये = शब्दार्थ के ज्ञान के लिए

उडुपेन = छोटी नाव से

तितीर्षुः = तैरने की इच्छा वाला

उपहास्यताम् = उपहास की पात्रता को

कवियशःप्रार्थी = कवि के यश को प्राप्त करने के इच्छुक

प्रांशुलभ्ये = उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य

पूर्वसूरिभि: = मेरे पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि

वज्रसमुत्कीर्ण = वज द्वारा छिद्र किये गये

आसमुद्रक्षितीशानाम् = समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के स्वामी

यथाविधिहुताग्नीनाम् = विधि के अनुसार अग्नि में हवन करने वाले

मितभाषिणाम् = कम बोलने वाले

गृहमेधिनाम् = विवाह करने वाले

विजिगीषूणाम् = जीतने के इच्छा वाले

वार्धके = वृद्धावस्था में

तनुत्यजां = शरीर को छोड़ने वाले

तनुवाग्विभवोऽपि = वाणी के सामर्थ्य से रहित

प्रचोदित: = प्रेरित किया

हेम्न: = सोने की

अर्हन्ति = योग्य है

संलक्ष्यते = प्रतीत होती है

काव्यांश की व्याख्या

14

मनु का परिचय

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ।।11 ।।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने महाराज मनु का परिचय देते हुये उन्हें राजाओं में प्रथम तथा वेदों में ओंकार की तरह बताया है।

अन्वयः मनीषिणां माननीयः वैवस्वतः नाम मनुः छन्दसां प्रणवः इव महीक्षिताम् आद्यः आसीत् ।

शब्दार्थ

मनीषिणाम् = विद्वानों के, **माननीयः**= पूज्य, छन्दसाम् वेदों के, **प्रणवः इव** = ओंकार के समान, **महीक्षिताम्** = पृथ्वी के राजाओं में, **आद्यः** = सर्वप्रथम, **वैवस्वतः नाम** = वैवस्वत नाम के सूर्य के पुत्र, **मनुः** = प्रथम मनु, **आसीत्** = थे।

अनुवाद - जिस प्रकार वेदों में सर्वप्रथम ओंकार होता है। उसी प्रकार राजाओं में सर्वप्रथम विद्वानों के पूजनीय सूर्य के पुत्र वैवस्वत नाम के मनु हुए।

रघुवंशम्

सन्धि -

आसीन्महीक्षिताम् - आसीत् + महीक्षिताम् (अनुनासिक सन्धि)

प्रणवश्छन्दसामिव - प्रणवः + छन्दसामिव (श्चुत्व सन्धि)

समास

मनीषिणाम् - मनसः इषिणः मनीषिणः तेषाम् मनीषिणाम् (तत्पुरुष समास)

महीक्षिताम् - महीं क्षियन्ति इति महीक्षितः तेषाम् महीक्षिताम् (उपपद समास)

विशेष - महाकवि कालिदास दस श्लोकों में रघुवंश के राजाओं का गुणानुवर्णन करने के अनन्तर इस श्लोक से उनकी वंश परम्परा का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। महाराज मनु साक्षात् सूर्य के पुत्र थे। सूर्य का एक नाम विवस्वान् है।

विवस्वान् का पुत्र होने के कारण मनु को वैवस्वत कहा गया। इनकी चर्चा अनेक पुराणों में भी हुई है। कालिदास ने उन्हें ओंकार के समान आदरणीय और सर्वव्यापक बताया है।